

तदा तं पर्वतं दुष्टं बहिः कृत्वा खरादिभिः। नारदः पूजितः सर्वैः सज्जनैर्भक्तिभारतः ॥६६॥
 नारदोपि सुधीस्तत्र जैनधर्मधुरन्धरः। सर्वशास्त्रप्रवीणोऽसौ सारधर्मोपदेशतः ॥६७॥
 राज्यं गिरितटाख्याया नगर्याः प्राप्य पुण्यतः। दीर्घकालं सुखं भुक्त्वा दानपूजाव्रतान्वितः ॥६८॥
 प्रान्ते वैराग्यभावेन जैनीं दीक्षां सुखप्रदाम्। समादाय मुनिर्भूत्वा भव्यान्सम्बोध्य शुद्धधीः ॥६९॥
 स्वयं रत्नत्रयं पूतं समाराध्य विचक्षणः। कृत्वा सारतपः स्वामी जिनपादाब्जभक्तिमान् ॥७०॥
 प्राप्तः सर्वार्थसिद्धिं हि प्रोल्लसच्छर्मदायिनीम्। जैनधर्मप्रसादेन किं न स्याद्भव्यदेहिनाम् ॥७१॥
 जित्वा सर्वकुवादिनो दृढतरः श्रीनारदो निर्मदः श्रीमत्सारजिनेन्द्रशासनमहासिन्धोर्लसच्चन्द्रमाः।
 धृत्वा सारतपः प्रसिद्धमहिमा सर्वार्थसिद्धिं श्रितः स श्रीमान्निजवंशमण्डनमणिः कुर्यात्सतां मंगलम् ॥७२॥

इति कथाकोशेऽनृतदोषाख्याने वसुराज्ञः कथा समाप्ता।

२७. श्रीभूतेः कथा।

श्रीजिनं शर्मदं नत्वा सुरासुरसमर्चितम्। स्तेयदोषोद्भवं वृत्तं वक्ष्ये श्रीभूतिसंश्रितम् ॥१॥
 सुधीः सिंहपुरे राजा सिंहसेनोतिधार्मिकः। रामदत्ता महाराज्ञी सर्वकार्यविचक्षणा ॥२॥

चाहिए। पर्वत की यह दुष्टता देखकर प्रजा के लोगों ने उसे गधे पर बैठा कर शहर से निकाल बाहर किया और नारद का बहुत आदर-सत्कार किया। नारद अब वहीं रहने लगा। वह बड़ा बुद्धिमान् और धर्मात्मा था। सब शास्त्रों में उसकी गति थी। वह वहाँ रहकर लोगों को धर्म का उपदेश दिया करता, भगवान् की पूजा करता, पात्रों को दान देता। उसकी यह धर्मपरायणता देखकर वसु के बाद राज्य-सिंहासन पर बैठने वाला राजा उस पर बहुत खुश हुआ। उस खुशी में उसने नारद को गिरितट नामक नगरी का राज्य भेंट में दे दिया। नारद ने बहुत समय तक उस राज्य का सुख भोगा। अन्त में संसार से उदासीन होकर उसने जिनदीक्षा ग्रहण कर ली। मुनि होकर उसने अनेक जीवों को कल्याण के मार्ग में लगाया और तपस्या द्वारा पवित्र रत्नत्रय की आराधना कर आयु के अन्त में वह सर्वार्थसिद्धि गया, जो कि सर्वोत्तम सुख का स्थान है। सच है, जैनधर्म की कृपा से भव्य पुरुषों को क्या प्राप्त नहीं होता ॥६०-७१॥

निरभिमानी नारद अपने धर्म पर बड़ा दृढ़ था। उसने समय-समय पर और धर्म वालों के साथ शास्त्रार्थ में विजय प्राप्त कर जैनधर्म की खूब प्रभावना की। यह जिनशासन रूप महान् समुद्र के बढ़ाने वाला चन्द्रमा था। ब्राह्मणवंश का एक चमकता हुआ रत्न था। अपनी सत्यता के प्रभाव से उसने बहुत सिद्धि प्राप्त कर ली थी। अन्त में वह तपस्या कर सर्वार्थसिद्धि गया। वह महात्मा नारद सबका कल्याण करे ॥७२॥

२७. श्रीभूति-पुरोहित की कथा

जिन्हें स्वर्ग के देवता बड़ी भक्ति के साथ पूजते हैं, उन सुख के देने वाले जिनभगवान् को नमस्कार कर मैं श्रीभूत-पुरोहित का उपाख्यान कहता हूँ, जो चोरी करके दुर्गति में गया है। सिंहपुर नाम

अभूतपुरोहितस्तस्य श्रीभूतः सोपि विप्रकः। सत्यवक्ताहमित्युच्चैः स्वस्फीतिं मायया व्यधात् ॥३॥
 पद्मखण्डपुरे चाथ सुमित्राख्यो वणिग्वरः। पुत्रः समुद्रदत्तोस्य सुमित्राकुक्षिसंभवः ॥४॥
 वाणिज्येनैकदासौ च सुधीः सिंहपुरं गतः। तत्र श्रीभूतिविप्रस्य पार्श्वे सद्रत्नपञ्चकम् ॥५॥
 धृत्वा समुद्रदत्तोगा-द्रत्नद्वीपं धनार्जनम्। कृत्वा यावत्समायाति समुद्रे पापकर्मतः ॥६॥
 याने संस्फुटिते मृत्युं सम्प्राप्ता बहवो जनाः। अहो पुण्यं विना लोके कार्यैसिद्धिर्न देहिनाम् ॥७॥
 कष्टात्समुद्रदत्तोसौ प्राप्य सिंहपुरं परम्। पार्श्वे श्रीभूतिविप्रस्य रत्नार्थी निर्धनो गतः ॥८॥
 आगच्छन्तं तमालोक्य दूरतो दुष्टमानसः। लोकानामग्रतो पापी श्रीभूतिर्लोभसंचयः ॥९॥
 शृण्वन्त्वहो अयं कोपि श्रूयते भग्नयानकः। धनक्षयात्समायाति भूत्वा च ग्रहिलस्तराम् ॥१०॥

का सुन्दर नगर था। उसका राजा सिंहसेन था। सिंहसेन की रानी का नाम रामदत्ता था। राजा बुद्धिमान् और धर्मपरायण था। रानी भी बड़ी चतुर थी। सब कामों को वह उत्तमता के साथ करती थी। राजपुरोहित श्रीभूति था। उसने मायाचारी से अपने सम्बन्ध में यह बात प्रसिद्ध कर रखी थी कि मैं बड़ा सत्य बोलने वाला हूँ। बेचारे भोले लोग उस कपटी के विश्वास में आकर अनेक बार ठगे जाते थे। पर उसके कपट का पता किसी को नहीं पड़ पाता था। ऐसे ही एक दिन एक विदेशी उसके चंगुल में फँसा। इसका नाम समुद्रदत्त था। यह पद्मखण्डपुर का रहने वाला था। इसके पिता सुमित्र और माता सुमित्रा थी। समुद्रदत्त की इच्छा एक दिन व्यापारार्थ विदेश जाने की हुई। इसके पास पाँच बहुत कीमती रत्न थे। पद्मखण्डपुर में कोई ऐसा विश्वस्त पुरुष इसके ध्यान में नहीं आया, जिसके पास यह अपने रत्नों को रखकर निश्चित हो सकता था। इसने श्रीभूति की प्रसिद्धि सुन रखी थी। इसलिए उसके पास रत्न रखने का विचार कर यह सिंहपुर आया। यहाँ श्रीभूति से मिलकर इसने अपना विचार उसे कह सुनाया। श्रीभूति ने इसके रत्नों का रखना स्वीकार कर लिया। समुद्रदत्त को इससे बड़ी खुशी हुई और साथ ही वह उन रत्नों को श्रीभूति को सौंपकर आप रत्नद्वीप के लिए रवाना हो गया। वहाँ कई दिनों तक ठहरकर इसने बहुत घन कमाया। जब वह वापस लौटकर जहाज द्वारा अपने देश की ओर आ रहा था तब पापकर्म के उदय से इसका जहाज टकराकर फट गया। बहुत से आदमी डूब मरे। बहुत ठीक लिखा है कि **बिना पुण्य के कभी कोई कार्य सिद्ध नहीं होता।** समुद्रदत्त इस समय भाग्य से मरते-मरते बच गया। इसके हाथ जहाज का एक छोटा-सा टुकड़ा लग गया। यह उस पर बैठकर बड़ी कठिनाता के साथ किसी तरह किनारे आ गया। यहाँ से यह सीधा श्रीभूति पुरोहित के पास पहुँचा। श्रीभूति इसे दूर से देखकर ही पहचान गया। वह धूर्त तो था ही, सो उसने अपने आसपास बैठे हुए लोगों से कहा-देखिये, वह कोई दरिद्र भिखमंगा आ रहा है अब यहाँ आकर व्यर्थ सिर खाने लगेगा। जिसके पास थोड़ा बहुत पैसा होता है या जिनकी मान मर्यादा लोगों में अधिक होती है तो उन्हें इन भिखारियों के मारे चैन नहीं। एक न एक हर समय सिर पर खड़ा ही रहता है। हम लोगों ने जो सुना था कि कल एक जहाज फटकर डूब गया है, मालूम

मन्येहं मां वृथा नत्वा महादुःखेन पीडितः। संयाचिष्यति रत्नानी-त्युक्त्वासौ ब्राह्मणः स्थितः ॥११॥
तदा समुद्रदत्तोसौ तं प्रणम्य जगाद च। देहि मे पञ्च रत्नानि श्रीभूते ब्राह्मणोत्तम ॥१२॥
इत्याकर्ण्य तदा तेन किं भो लोका मयोदितम्। सत्यं जातमिति प्रोक्त्वा ग्रहिलोयं बहिः कृतः ॥१३॥
ये पापिनो भवन्त्यत्र परेषां धनलम्पटाः। ते दुष्टा निन्दितं कर्म किं न कुर्वन्ति लोभतः ॥१४॥
ततो वणिग्वरः सोपि वञ्चितस्तेन पापिना। न दत्ते पञ्च रत्नानि श्रीभूतिर्मे द्विजः कुधीः ॥१५॥

होता है। यह उसी पर का कोई यात्री है और इसका सब धन नष्ट हो जाने से यह पागल हो गया जान पड़ता है। इसकी दुर्दशा से ज्ञान होता है कि यह इस समय बड़ा दुःखी है और इसी से संभव है कि यह मुझसे कोई बड़ी भारी याचना करे। श्रीभूति तो इस तरह लोगों को कह ही रहा था कि समुद्रदत्त उसके सामने जा खड़ा हुआ। श्रीभूति को नमस्कार कर अपनी हालत सुनाना आरम्भ करता है कि इतने में श्रीभूति बोल उठा कि मुझे इतना समय नहीं कि मैं तुम्हारी सारी दुःख कथा सुनूँ। हाँ तुम्हारी इस हालत से जान पड़ता है कि तुम पर कोई बड़ी भारी आफत आई है। अस्तु, मुझे तुम्हारे दुःख में संवेदना है। अच्छा जाइए, मैं नौकरों से कहे देता हूँ कि वे तुम्हें कुछ दिनों के लिए खाने का सामान दिलवा दें। यह कहकर ही उसने नौकरों की ओर मुँह फेरा और आठ दिन तक का खाने का सामान समुद्रदत्त को दिलवा देने के लिए उनसे कह दिया। बेचारा समुद्रदत्त तो श्रीभूति की बातें सुनकर हत-बुद्धि हो गया। उसे काटो तो खून नहीं। उसने घबराते-घबराते कहा—महाराज, आप यह क्या करते हैं? मेरे जो आपके पास पाँच रत्न रक्खे हैं, मुझे तो वे ही दीजिए। मैं आपका समान-वामान नहीं लेता ॥१-१२॥

श्रीभूति ने रत्न का नाम सुनते ही अपने चेहरे पर का भाव बदला और त्योंही चढ़ाकर जोर के साथ कहा—रत्न! अरे दरिद्र! तेरे रत्न और मेरे पास? यह तू क्या बक रहा है? कह तो सही वास्तव में तेरी मंशा क्या है? क्या मुझे तू बदनाम करना चाहता है? तू कौन, और कहाँ का रहने वाला है? मैं तुझे जानता तक नहीं, फिर तेरे रत्न मेरे पास आए कहाँ से? जा-जा, पागल तो नहीं हो गया है? ठीक ध्यान से विचार कर। किसी और के यहाँ रखकर उसके भ्रम से मेरे पास आ गया जान पड़ता है। इसके बाद ही उसने लोगों की ओर नजर फेरकर कहा—देखिये साहब, मैंने कहा था न? कि यह मेरे से कोई बड़ी भारी याचना करेगा। ठीक वही हुआ। बतलाइए, इस दरिद्र के पास रत्न कहाँ से आ सकते हैं? धन नष्ट हो जाने से जान पड़ता है यह बहक गया है। यह कहकर श्रीभूति ने नौकरों द्वारा समुद्रदत्त को घर से बाहर निकलवा दिया। नीतिकार ने ठीक लिखा है—जो लोग पापी होते हैं और जिन्हें दूसरों के धन की चाह होती है, वे दुष्ट पुरुष ऐसा कौन बुरा काम है जिसे लोभ के वश हो न करते हों? श्रीभूति ऐसे ही पापियों में से एक था, तब वह कैसे ऐसे निंद्य कर्म से बचा रह सकता था? पापी श्रीभूति से ठगा जाकर बेचारा समुद्रदत्त सचमुच पागल हो गया? वह श्रीभूति के मकान से निकलते ही यह चिल्लाता हुआ कि पापी श्रीभूति मेरे रत्न नहीं देता है, सारे शहर में घूमने लगा। पर उसे एक

सर्वत्र नगरीमध्ये कृत्वेत्याक्रोशकं सदा। तथा पश्चिमरात्रौ च राजमन्दिरसन्निधौ ॥१६॥
 पूत्कारं संकरोत्येवं षण्मासेषु गतेषु च। रामदत्ता तदा राज्ञी सिंहसेनं नृपं जगौ ॥१७॥
 नायं देव ग्रहग्रस्तो नित्यमेवैकवाक्यतः। इत्युक्त्वा च ततो द्यूते तया राज्ञ्या स्वबुद्धितः ॥१८॥
 पृष्टः पुरोहितश्चेति ब्रूहि भो द्विजसत्तम। अद्यः किं भोजनं भुक्तं भवद्भिः सोशनं जगौ ॥१९॥
 साभिज्ञानेन तेनोच्चैः श्रीभूतस्त्रीसमीपके। धात्री निपुणमत्याख्या प्रेषिता रत्नहेतवे ॥२०॥

भिखारी के वेश में देखकर किसी ने उसकी बात पर विश्वास नहीं किया। उल्टा उसे ही सब पागल बताने लगे। समुद्रदत्त दिन भर तो इस तरह चिल्लाता हुआ सारे शहर में घूमता-फिरता और जब रात होती तब राजमहल के पीछे एक वृक्ष पर चढ़ जाता और सारी रात उसी तरह चिल्लाया करता। ऐसा करते-करते उसे ठीक छह महीना बीत गये। समुद्रदत्त का इस तरह रोज-रोज चिल्लाना सुनकर एक दिन महारानी रामदत्ता ने सोचा कि बात वास्तव में क्या है, इसका जरूर पता लगाना चाहिए। तब एक दिन उसने अपने स्वामी से कहा-प्राणनाथ, मैं रोज एक गरीब की पुकार सुनती हूँ। मैं तो यह समझती रही कि वह पागल हो गया है और इसी से दिन-रात चिल्लाया करता है, कि श्रीभूति मेरे रत्न नहीं देता। पर प्रतिदिन उसके मुँह से एक ही वाक्य सुनकर मेरे मन में कुछ खटका पैदा होता है। इसलिए आप उसे बुलाकर पूछिये तो कि वास्तव में रहस्य क्या है? रानी के कहे अनुसार राजा ने समुद्रदत्त को बुलाकर सब बातें पूछी। समुद्रदत्त ने जो यथार्थ घटना थी, वह राजा से कह सुनाई सुनकर राजा ने रानी से कहा कि इसके चेहरे पर से तो इसकी बात ठीक जँचती है। पर इसका भेद खुलने के लिए क्या उपाय है? रानी ने थोड़ी देर तक विचार कर कहा-हाँ, इसकी आप चिन्ता न करें। मैं सब बातें जान लूँगी ॥१३-१८॥

दूसरे दिन रानी ने पुरोहित जी को अपने अन्तःपुर में बुलाया। आदर-सत्कार होने के बाद रानी ने उनसे कहा-मेरी इच्छा बहुत दिनों से आपसे मिलने की थी, पर कोई ठीक समय ही नहीं मिल पाता था। आज बड़ी खुशी हुई कि आपने यहाँ आने की कृपा की। इसके बाद रानी ने पुरोहित से कुछ इधर-उधर की बातें करके उनसे भोजन का हाल पूछा। उनके भोजन का सब हाल जानकर उसने अपनी एक विश्वस्त दासी को बुलाया और उसे कुछ बातें समझा-बुझाकर जाने को कह दिया। दासी के जाने के बाद रानी ने पुरोहित जी से एक नई ही बात का जिक्र उठाया। वह बोली-पुरोहित जी, सुनती हूँ कि आप पासे खेलने में बड़े चतुर और बुद्धिमान् हैं। मेरी बहुत दिनों से इच्छा होती थी कि आपके साथ खेलकर मैं भी एक बार देखूँ कि आप किस चतुराई से खेलते हैं। यह कहकर रानी ने एक दासी को बुलाकर चौपड़ ले आने की आज्ञा की ॥१९॥

पुरोहितजी रानी की बात सुनकर दंग रह गए। वे घबराकर बोले-हैं! हैं! महारानीजी, यह आप क्या करती हैं? मैं एक भिक्षुक ब्राह्मण और आपके साथ मेरी यह धृष्टता। यदि महाराज सुन पावें तो

नैव दत्तानि रत्नानि तया श्रीभूतभार्यया। रामदत्ता ततो राज्ञी द्यूते जित्वा प्रपञ्चतः ॥२१॥
 पुनः संप्रेषयामास तन्नामाङ्कितमुद्रिकाम्। ब्राह्मणी सा तदा नैव ददौ रत्नानि लोभतः ॥२२॥
 पुनर्यज्ञोपवीतेन धात्र्या संयाचिता सती। सा तस्यै तानि रत्नानि संददाति स्म भीतितः ॥२३॥
 ततो राज्ञ्या स्वनाथस्य दर्शितानि तया मुदा। तेन श्रीसिंहसेनेन रत्नान्यादाय धीमता ॥२४॥

वे मेरी क्या गति बनायेंगे?

रानी ने कहा—पुरोहित जी, आप इतने घबराइए मत। मेरे साथ खेलने में आपको किसी प्रकार के गहरे विचार में पड़ने की कोई आवश्यकता नहीं। महाराज इस विषय में आपसे कुछ नहीं कहेंगे। आप डरिए मत।

बेचारे पुरोहितजी बड़े पशोपेश में पड़े। रानी की आज्ञा भी वे नहीं टाल सकते और इधर महाराज का उन्हें भय। वे तो इस उधेड़-बुन में लगे हुए थे कि दासी ने चौपड़ लाकर रानी के सामने रख दी। आखिर उन्हें खेलना ही पड़ा। रानी ने पहली ही बाजी में पुरोहित जी की अँगूठी, जिस पर कि उसका नाम खुदा हुआ था, जीत ली। दोनों फिर खेलने लगे। इतने में पहली दासी ने आकर रानी से कुछ कहा। रानी ने अब की बार पुरोहित जी से जीती हुई अँगूठी चुपके से उसे देकर चले जाने को कह दिया। दासी घण्टे भर बाद फिर आई उसे कुछ निराश सी देखकर रानी ने इशारे से अपने कमरे के बाहर ही रहने को कह दिया और आप अपने खेल में लग गई। अब की बार उसने पुरोहित जी का जनेऊ जीत लिया और किसी बहाने से उस दासी को बुलाकर चुपके से जनेऊ देकर भेज दिया। दासी के वापस आने तक रानी और पुरोहित जी को खेल में लगाये रही। इतने में दासी भी आ गई उसे प्रसन्न देखकर, रानी ने अपना मनोरथ पूर्ण हुआ समझा। उसने उसी समय खेल बन्द किया और पुरोहित जी की अँगूठी और जनेऊ उन्हें वापस देकर वह बोली—आप सचमुच खेलने में बड़े चतुर हैं। आपकी चतुरता देखकर मैं बहुत प्रसन्न हुई आज मैंने सिर्फ इस चतुरता को देखने के लिए ही आपको यह कष्ट दिया था। आप इसके लिए मुझे क्षमा करें। अब आप खुशी के साथ जा सकते हैं।

बेचारे पुरोहित जी रानी के महल से बिदा हुए। उन्हें इसका कुछ भी पता नहीं पड़ा कि रानी मेरी आँखों में दिन दहाड़े धूल झोंककर मुझे कैसा उल्लू बनाया है।

बात असल में यह थी कि रानी ने पहले पुरोहित जी की जीती हुई अँगूठी देकर दासी को उनकी स्त्री के पास समुद्रदत्त के रत्न लेने को भेजा, पर जब पुरोहित जी की स्त्री ने अँगूठी देखकर भी उसे रत्न नहीं दिये तब यज्ञोपवीत जीता और उसे दासी के हाथ देकर फिर भेजा। अब की बार रानी का मनोरथ सिद्ध हुआ। पुरोहित की स्त्री ने दासी की बातों से डरकर झटपट रत्नों को निकाल दासी के हवाले कर दिया। दासी ने रत्न लाकर रानी को दे दिये। रानी प्रसन्न हुई। पुरोहित जी तो खेलते रहे और उधर उनका भाग्य फट गया, इसकी उन्हें रत्तीभर भी खबर नहीं पड़ी।

क्षिप्त्वा स्वकीयरत्नानां मध्येऽसौ भणितो वणिक् । यानि ते त्वं गृहाणेति तानि भो ग्रहिल ध्रुवम् ॥२५॥
 ततो समुद्रदत्तोसौ स्वरत्नान्येव शुद्धधीः । संजग्राह सतां चित्ते परद्रव्यं विषोपमम् ॥२६॥
 सिंहसेनो महीनाथस्तदा सन्तुष्टमानसः । तस्मै वणिग्वरायोच्चैर्दिव्यं श्रेष्ठिपदं ददौ ॥२७॥
 ततो भूपेन रुष्टेन पृष्टा धर्माधिकारिणः । ब्रूत भो रत्नचोरस्य किं कार्यं चास्य पापिनः ॥२८॥
 तैरुक्तं देव दण्डोस्य महादोषविधायिनः । सर्वस्वहरणं मल्ल-त्रिंशत्सन्मुष्टयोथवा ॥२९॥
 कांस्यपात्रत्रयापूर्ण-नवगोमयभक्षणम् । इति त्रिविधदण्डेन दण्डितः पुररक्षकैः ॥३०॥

रानी ने रत्नों को ले जाकर महाराज के सामने रख दिया और साथ ही पुरोहित जी के महल से रवाना होने की खबर दी। महाराज ने उसी समय उनके गिरफ्तार करने की सिपाहियों को आज्ञा दी। बेचारे पुरोहित जी अभी महल के बाहर भी नहीं हुए थे कि सिपाहियों ने जाकर उनके हाथों में हथकड़ी डाल दी और उन्हें दरबार में लाकर उपस्थित कर दिया।

पुरोहित जी देखकर भौचक से रह गए। उनकी समझ में नहीं आया कि यह एकाएक क्या हो गया और कौन सा मैंने ऐसा भारी अपराध किया जिससे मुझे एक शब्द तक न बोलने देकर मेरी यह दशा की गई वे हतबुद्धि हो गए। उन्हें इस बात का और अधिक दुःख हुआ कि मैं एक राजपुरोहित, ऐसा वैसा गैर आदमी नहीं और मेरी यह दशा? और वह बिना किसी अपराध के? क्रोध, लज्जा और आत्मग्लानि से उनकी एक विलक्षण ही दशा हो गई ॥२०-२४॥

रानी ने जैसे ही रत्नों को महाराज के सामने रखा, महाराज ने उसी समय उन्हें अपने और बहुत से रत्नों में मिलाकर समुद्रदत्त को बुलाया और उससे कहा—अच्छा, देखो तो इन रत्नों में तुम्हारे रत्न हैं क्या? और हो तो उन्हें निकाल लो। महाराज की आज्ञा पाकर समुद्रदत्त ने उन सब रत्नों में से अपने रत्नों को पहचान कर निकाल लिया। सच है, सज्जन पुरुष अपनी ही वस्तु को लेते हैं। दूसरों की वस्तु उन्हें विष समान जान पड़ती हैं। समुद्रदत्त ने अपने रत्न पहचान लिए, यह देख महाराज उस पर इतने प्रसन्न हुए कि उसे उन्होंने अपने राज सेठ बना लिया ॥२५-२७॥

महाराज तुरन्त ही दरबार में आए। जैसे ही उनकी दृष्टि पुरोहित जी पर पड़ी, उन्होंने बड़ी ग्लानि की दृष्टि से उनकी ओर देखकर गुस्से के साथ कहा—पापी, ठग! ॥२८॥

मैं नहीं जानता था कि तू हृदय का इतना काला हो गया और ऊपर से ऐसा ढोंगी का वेष लेकर मेरी गरीब और भोली प्रजा को इस तरह धोखे में फँसायेगा? न मालूम तेरी इस कपटवृत्ति ने मेरे कितने बन्धुओं को घर-घर का भिखारी बनाया होगा? ऐ पाप के पुतले, लोभ के जहरीले सर्प, तुझे देखकर हृदय चाहता तो यह है कि तुझे इसकी कोई ऐसी भयंकर सजा दी जाए, जिससे तुझे भी इसका ठीक प्रायश्चित मिल जाए और सर्व साधारण को दुराचारियों के साथ मेरे कठिन शासन का ज्ञान हो जाए; उससे फिर कोई ऐसा अपराध करने का साहस न करे। परन्तु तू ब्राह्मण है, इसलिए तेरे कुल के लिहाज से तेरी सजा के विचार का भार मैं अपने मंत्री-मण्डल पर छोड़ता हूँ। यह कहकर ही राजा ने अपने

आर्त्तध्यानेन मृत्वासौ श्रीभूतः पापपण्डितः। कष्टतो दुर्गतिं प्राप विप्रको धनलम्पटः ॥३१॥
इति ज्ञात्वा महाभव्यैः स्तेयत्वं कष्टकोटिदम्। त्यक्त्वा श्रीमज्जिनेन्द्रोक्ते धर्मे कार्या मतिः सदा ॥३२॥

धर्माधिकारियों की ओर देखकर कहा—“इस पापी ने एक विदेशी यात्री के, जिसका कि नाम समुद्रदत्त है और वह यहीं बैठा हुआ भी है, कीमती पाँच रत्नों को हड़प कर लिया है, जिनको कि यात्री ने समुद्र यात्रा करने के पहले श्रीभूति को एक विश्वस्त और राजप्रतिष्ठित समझकर धरोहर के रूप में रक्खे थे। दैव की विचित्र गति से यात्रा से लौटते समय यात्री का जहाज एकाएक फट गया और साथ ही उसका सब माल असबाब भी डूब गया। यात्री किसी तरह बच गया। उसने जाकर पुरोहित श्रीभूति से अपनी धरोहर वापस लौटा देने के लिए प्रार्थना की।

पुरोहित के मन में पाप का भूत सवार हुआ। बेचारे गरीब यात्री को उसने धक्के देकर घर से बाहर निकलवा दिया। यात्री अपनी इस हालत से पागल-सा होकर सारे शहर में यह पुकार मचाता हुआ महिनों फिरा कि श्रीभूति ने मेरे रत्न चुरा लिए, पर उस पर किसी का ध्यान न जाकर उल्टा सबने उसे ही पागल कह दिया। उसकी यह दशा देखकर महारानी को बड़ी दया आई। यात्री को बुलाया कर उससे सब बातें दर्याफ्त की गई बाद में महारानी ने उपाय द्वारा वे रत्न अपने हस्तगत कर लिए। वे रत्न समुद्रदत्त के हैं या नहीं इसकी परीक्षा करने के आशय से उन पाँचों रत्नों को मैंने बहुत से और रत्नों में मिला दिया। पर आश्चर्य है कि यात्री ने अपने रत्नों को पहचान कर निकाल लिए। श्रीभूति के जिस्में धरोहर हड़पकर जाने को गुरुत्तर अपराध है। इसके सिवा धोखेबाजी, ठगाई आदि और भी बहुत से अपराध हैं। इसकी इसे क्या सजा दी जाए, इसका आप विचार करें।

धर्माधिकारियों ने आपस में सलाहकर कहा—महाराज, श्रीभूति पुरोहित का अपराध बड़ा भारी है। इसके लिए हम तीन प्रकार की सजायें नियत करते हैं। उनमें से फिर जिसे यह पसन्द करे, स्वीकार करे। या तो इसका सर्वस्व हरण कर लिया जाए और इसे देश बाहर कर दिया जाए, या पहलवानों की बत्तीस मुक्कियाँ इस पर पड़े या तीन थाली में भरे हुए गोबर को यह खा जाए। श्री भूति से सजा पसन्द करने को कहा गया। पहले उसने गोबर खाना चाहा, पर खाया नहीं गया, तब मुक्कियाँ खाने को कहा। मुक्कियाँ पड़ना शुरू हुई कोई दस पन्द्रह मुक्कियाँ पड़ी होंगी कि पुरोहित जी अकल ठिकाने आ गई आप एकदम चक्कर खाकर जमीन पर ऐसे गिरे कि उठे ही नहीं। महा आर्त्तध्यान से उनकी मृत्यु हुई वे दुर्गति में गए। धन में अत्यन्त लम्पटता का उन्हें उपयुक्त प्रायश्चित्त मिला। इसलिए जो भव्य पुरुष हैं, उसे उचित है कि वे चोरी को अत्यन्त दुःख का कारण समझकर उसका परित्याग करें और अपनी बुद्धि को पवित्र जैनधर्म की ओर लगावें, जो ऐसे महापापों से बचाने वाला है ॥२९-३२॥

असुरसुरनरेन्द्रैः खेचरेन्द्रैः प्रपूज्यो जिनपतिरिह भक्त्या सर्वसन्देशहर्ता।
तदुदितवरवाणी सारसौख्यस्य खानिर्दिशतु मम शिवानि श्रीप्रभाचन्द्रदेवः ॥३३॥
इति कथाकोशे स्तेयदोषस्य श्रीभूतिकथा समाप्ता।

२८. नीली-कथा

अथ श्रीजिननाथस्य नत्वा पादद्वयं हितम्। चतुर्थाणुव्रताख्यानं वक्ष्ये नीलीसमाश्रितम् ॥१॥
क्षेत्रेऽस्मिन् भारते पूते लाटदेशे मनोहरे। श्रीमत्सर्वज्ञनाथोक्त-धर्मकार्यैरनुत्तरे ॥२॥
पत्तने भृगुकच्छाख्ये सर्ववस्तुशतैर्भृते। राजाभूद्वसुपालाख्यो सावधानः प्रजाहिते ॥३॥
श्रेष्ठी श्रीजिनदत्तोभू-द्वणिक्सन्दोहसुन्दरः। श्रीमज्जिनेन्द्रचन्द्राणां चरणार्चनतत्परः ॥४॥
तत्प्रिया जिनदत्ताख्या साध्वी सद्धानमण्डिता। नीली नाम्नी तयोः पुत्री मुनीनामिव शीलता ॥५॥

वे जिनभगवान्, जो सब सन्देशों के नाश करने वाले और स्वर्ग के देवों और विद्याधरों द्वारा पूज्य हैं, वह जिनवाणी जो सब सुखों की खान है और मेरे गुरु श्रीप्रभाचन्द्र ये सब मुझे मंगल प्रदान करें, मुझे कल्याण का मार्ग बतलावें ॥३३॥

२८. नीली की कथा

जिनभगवान् के चरणों को, जो कि कल्याण के करने वाले हैं, नमस्कार कर श्रीमती नीली सुन्दरी की मैं कथा कहता हूँ। नीली ने चौथे अणुव्रत ब्रह्मचर्य की रक्षा कर प्रसिद्धि प्राप्त की है ॥१॥

पवित्र भारतवर्ष में लाटदेश एक सुन्दर और प्रसिद्ध देश था। जिनधर्म का वहाँ खूब प्रचार था। वहाँ की प्रजा अपने धर्म कर्म पर बड़ी दृढ़ थी। इससे इस देश की शोभा को उस समय कोई देश नहीं पा सकता था। जिस समय की यह कथा है, तब उसकी प्रधान राजधानी भृगुकच्छ नगर था। वह नगर बहुत सुन्दर और सब प्रकार की योग्य और कीमती वस्तुओं से पूर्ण था। इसका राजा वसुपाल था और वह जिससे अपनी प्रजा सुखी हो, धनी हो, सदाचारी हो, दयालु हो इसके लिए कोई बात का कष्ट न हो इसका सदा प्रयत्नशील रहता था ॥२-३॥

यहीं एक सेठ रहता था। उसका नाम जिनदत्त था। जिनदत्त की शहर के सेठ साहूकारों में बड़ी इज्जत थी वह धर्मशील और जिनभगवान् का भक्त था। दान, पूजा, स्वाध्याय आदि पुण्यकर्मों को वह सदा नियमानुसार किया करता था। उसकी धर्मप्रिया का नाम जिनदत्ता था। जैसा जिनदत्त धर्मात्मा और सदाचारी था, उसकी गुणवती साध्वी स्त्री भी उसी के अनुरूप थी और इसी से इनके दिन बड़े ही सुख के साथ बीतते थे। अपने गार्हस्थ्य सुख को स्वर्ग सुख से भी कहीं बढ़कर इन्होंने बना लिया था। जिनदत्ता बड़ी उदार प्रकृति की स्त्री थी। वह जिसे दुःखी देखती उसकी सब तरह सहायता करती और उनके साथ प्रेम करती। इसके सन्तान में केवल एक पुत्री थी। उसका नाम नीली था। अपने माता-पिता के अनुरूप ही इसमें गुण और सदाचार की सृष्टि हुई थी। जैसे सन्तों का स्वभाव पवित्र होता है, नीली भी उसी प्रकार बड़े पवित्र स्वभाव की थी ॥४-५॥